|| श्रीमद्भगवद्गीता विवेचन सारांश ||

अध्याय 16: दैवासुरसंपद्विभागयोग

2/2 (श्लोक 3-24), रविवार, 10 मई 2026

विवेचक: गीता व्रती जाह्नवी जी देखणे

यूट्यूब लिंक: https://youtu.be/Hr5Lf4zD6mI

आसुरी प्रवृत्ति- अधम योनि की प्राप्ति

हमारी चिर-प्राचीन सनातन परम्परा का निर्वाह करते हुए ईश-वन्दना, गुरु-वन्दना, राष्ट्र-वन्दना, सङ्कटमोचन श्रीहनुमान चालीसा पाठ, सरस्वती वन्दना एवं गीताजी की वन्दना के साथ आज के सत्र का शुभारम्भ हुआ। बालसाधकों के लिए विशेष सत्र में पुनरावृत्ति स्वरूप पूर्ववर्ती विवेचन से उत्पन्न प्रश्नों से सत्र का आरम्भ हुआ।

प्रश्न- हम कौन से अध्याय का अध्ययन कर रहे है?
उत्तर- सोलहवें अध्याय का।

प्रश्न- सोलहवें अध्याय का नाम क्या है?
उत्तर- दैवासुरसम्पदविभागयोग।

प्रश्न- इस अध्याय में कौन-सी दो बातें बतायी गयी है?
उत्तर- दैवीय और आसुरी गुण। अच्छे कार्य दैवीय गुणों में आते हैं, बुरे कार्य आसुरी गुण वाले करते हैं।

प्रश्न- आसुरी गुणों वाले कौन-कौन से असुर हैं?
उत्तर- कंस, रावण, दुर्योधन, कुम्भकर्ण, हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु आदि ये असुर हैं। इन लोगों ने जीवनभर श्रीभगवान् से प्राप्त वरदान से लोगों को कष्ट दिया था।

प्रश्न- सरस्वती माँ कौन-सी शक्ति की देवी मानी जाती है?
उत्तर- विद्या, बुद्धि एवं ज्ञान की देवी। माँ सरस्वती ज्ञान और विद्या का वरदान देती है।

प्रश्न- श्रीहनुमान जी की आराधना से क्या प्राप्त होता है?
उत्तर- बल, बुद्धि एवं भक्ति।
हनुमान चालीसा पाठ करने से बल, बुद्धि निश्चित रूप से आती है।कितना भी कठिन कार्य हो पूर्ण कर सकते हैं। हनुमान जी समुद्र लाँघ कर, लङ्का चले गये थे। माता सीता का पता लगा लिया था। वे अत्यन्त बलशाली थे।

देवता अपने गुणों से लोगों की सहायता करते हैं, असुर अपने गुणों से लोगों को कष्ट पहुँचाते है।

प्रश्न- कुछ मनुष्य अच्छे तथा कुछ मनुष्य बुरे गुणों को धारण करते हैं, लोग दोनों में से किसको पसन्द करते हैं?
उत्तर- जिनके अच्छे गुण होते हैं।

बुरे गुणों को जानकर, आत्मचिन्तन करके जो भी बुरे गुण हों, उनको दूर करने का प्रयास करना चाहिए। दम्भ, अहङ्कार आये तो उसे दूर करने का प्रयास करना चाहिए।

प्रश्न- इस अध्याय में कितने दैवीय गुण बताये गये हैं?
उत्तर- पहले के तीन श्लोकों में श्रीभगवान् ने **छब्बीस दैवीय गुणों** को बताया है।

16.3

तेजः क्षमा धृतिः(श्) शौचम्, अद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातस्य भारत।।16.3।।

तेज (प्रभाव), क्षमा, धैर्य, शरीर की शुद्धि, वैर भाव का न होना (और) मान को न चाहना, हे भरतवंशी अर्जुन ! (ये सभी) दैवी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचन-

- **तेज**- एक दैवीय गुण है। तेजस्वी व्यक्ति उत्साह से कार्यो में भाग लेता है। वह अहिंसक होता है और बुद्धि से काम लेता है।

प्रश्न- कुछ तेजस्वी व्यक्तियों के नाम बताइए?
उत्तर- माता- पिता, श्रीभगवान्, गुरु तेजस्वी होते हैं। इसके अतिरिक्त, इतिहास में जो तेजस्वी हुए उनमें श्रीकृष्ण, पृथ्वीराज चौहान, शिवाजी महाराज, सम्भाजी हैं।

प्रश्न- इनको तेजस्वी क्यों कहा जाता है?
उत्तर- कुछ भी अनुचित होने पर विरोध करने वाले तेजस्वी होते है। बादशाह औरङ्ग़ज़ेब द्वारा प्रजा को कष्ट दिये जाने पर शिवाजी महाराज ने विरोध किया और अपने बाहुबल से बादशाह को कई बार पराजित भी किया। तेज़स्वियों में विशेष शक्ति होती है।

एक कथा है-
स्वामी विवेकानन्द जी के जीवन में जहाज द्वारा समुद्र यात्रा के समय विदेशी नागरिकों से सम्बन्धित एक प्रमुख घटना प्रसिद्ध हैं। यह घटना स्वामी विवेकानन्द के पहली अमेरिका यात्रा से लौटने के बाद या पश्चिमी दुनिया की यात्रा के समय की है।

घटना: जहाज पर दो अङ्ग्रेज़ थे जिन्होंने स्वामी विवेकानन्द जी की वेश-भूषा की, अङ्ग्रेज़ी में आपसी वार्तालाप में बहुत बुरा-भला कहते हुए खिल्ली उड़ायी। स्वामीजी शान्तभाव से सुनते रहे। बाद में वे भारतवर्ष की, हिन्दू धर्म की कड़वी आलोचना करने लगे। उन्होंने स्वामी जी के सामने ही भारतवर्ष का मजाक उड़ाया और बुरा-भला कहा।

स्वामी जी शान्ति से उनकी बातें सुनते रहे, लेकिन जब उन्होंने देश और धर्म के बारे में सीमा पार कर दी तो स्वामी जी ने एक अङ्ग्रेज़ को कॉलर से पकड़ लिया और कड़े स्वर में कहा: **"अगर आपने मेरे देश और धर्म का अपमान किया तो मैं आपको जहाज के बाहर (समुद्र में) फेंक दूँगा।**

वे अङ्ग्रेज़ डर गए, उन्होंने तुरन्त क्षमा याचना की और दोबारा ऐसा न करने का वादा किया। तेजस्वी व्यक्ति जानते हैं, उनको कहाँ

बोलना है, कहाँ नहीं बोलना है। वे अपनी मर्यादा का ध्यान रखते हैं।

- **क्षमा**- क्षमा दैवीय गुण है। मनुष्य को क्षमाशील होना चाहिए। छोटी-छोटी बातों को पकड़ कर नहीं बैठ जाना चाहिए।
- **धृति**- धैर्य, जीवन में धैर्य अत्यन्त जरूरी है, यह जीवन को सुन्दर बनाता है। गीताजी अभी आप बालसाधकों ने प्रारम्भ ही की है, सारे अध्यायों को पढ़ना है, फिर उनके श्लोकों के अर्थ समझाना, श्लोकों को कण्ठस्थ करना। इन सब में धैर्य की अत्यन्त आवश्यकता है।

किसी भी कार्य को कुशलता से सीखने के लिए, धैर्य की बहुत आवश्यकता है। गीताजी ही नहीं, नृत्य, गीत कुछ भी सीखना है तो अभ्यास की आवश्यकता है। **अभ्यास के लिए धैर्य आवश्यक है**।

- **शौच**- स्वच्छता।
- **प्रश्न**- स्वच्छता किस- किस बात की होती है।

उत्तर- मन, शरीर और विचारों की स्वच्छता। ये दैवीय गुण हैं। दूसरों की सहायता करने से मन शुद्ध होता है।

- **अद्रोहो-** सदैव अपने माता-पिता की बातों को मानना चाहिये। नहीं मानना ही द्रोह कहलाता है। उन्होंने कहा पढ़ाई करो, सारे दिन मत खेलो, स्वास्थवर्द्धक वस्तुओं का ही सेवन करना चाहिए। ठीक इसके विपरीत खेलेंगे, उल्टा-पुल्टा खाएँगे तो यह द्रोह है।

जो देशहित का कार्य नहीं करते, वे देशद्रोही हैं। यह दैवीय गुण नहीं है। माता-पिता, गुरु की बातों को मानना चाहिए। नहीं समझ में आए तो भी समझने का प्रयास करके कार्य करना चाहिये। उनके कथनानुसार कार्य और व्यवहार करने वाले दैवीय गुणों से युक्त होते हैं। श्रीभगवान् को अत्यन्त प्रिय भी होते हैं।

- **नातिमानिता** - घमण्ड नहीं होना। कई लोग बहुत मनुहार करने पर, बार- बार बोलने पर भी कार्य नहीं करते, उनमे दर्प और घमण्ड होता है। माँ बार-बार रसोई में सहायता के लिए बुलाती रहती है, चलचित्र ही देख रहे हैं, उठ कर सहायता के लिए नहीं जाएँगे। दैवीय गुण अमानित है।

ये दैवीय गुणों की सम्पत्ति दैवीय व्यक्तियों में होती है।

हम भी धीरे- धीरे दैवीय गुणों को बढ़ायेंगे तो देवता होने लगेंगे। सद्‌गुणों से अलग तरह की शक्ति आने लगती है। उनके शब्द, कार्य शक्तिशाली होने लगते हैं। छोटी-छोटी बातों में परिवर्तन आने लगता है। उनका सम्मान बढ़ जाता है। लोगो का विश्वास बढ़ने लगता है।

आगे श्रीभगवान् आसुरी गुणों का विस्तार से वर्णन करेंगे, ताकि हम उनसे बच सके।

दो बातें बहुत महत्वपूर्ण होती है। एक जीवन में क्या करना चाहिये और क्या नहीं करना चाहिये?

बड़े होकर चिकित्सक, शिक्षक, अभियन्ता बनेंगे, यह स्पष्ट है। यह भी ज्ञात होना चाहिए क्या नहीं करना चाहिये। दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाले, अमानवीय कार्य नहीं करने चाहिये।

16.4

दम्भो दर्पोऽभिमानश्च, क्रोधः(फ्) पारुष्यमेव च।
अज्ञानं(ञ्) चाभिजातस्य, पार्थ सम्पदमासुरीम्।।16.4।।

हे पृथानन्दन ! दम्भ करना, घमण्ड करना और अभिमान करना, क्रोध करना तथा कठोरता रखना और अविवेक का होना भी - (ये सभी) आसुरी सम्पदा को प्राप्त हुए मनुष्य के (लक्षण) हैं।

विवेचन-

- **दम्भ-** दिखावे के लिए कोई भी कार्य करना।

हम सब गीताजी की कक्षा में गीताजी पढ़ने का अभ्यास करते हैं। मन में निश्चय करते हैं कि नित्य गीताजी के एक अध्याय का पाठ करेंगे। जिससे गीताजी को लय में पढ़ने का अभ्यास भी हो जाता है। वहीं कुछ लोग अतिथियों के आने पर तीव्र स्वर से गीताजी का पाठ दिखावे के लिए करने लगते हैं। यह आसुरी गुण है।

- **दर्प**-
- कोई वस्तु स्वयं के पास है पर अन्य के पास नहीं है तो घमण्ड होने लगता है। मेरी पोशाक, पुस्तक, घर आदि दर्प होने लगता है।
- **अभिमान**- अभिमान और दर्प एक जैसा ही होता है। दर्प वस्तुओं का होता है, अभिमान गुणों का होता है।

कोई कक्षा में प्रथम आता है तो प्रथम आने का अभिमान आ जाता है। कोई अच्छी चित्रकारी जानता है, नृत्य जानता है, नित्य गीताजी पढ़ता है तो अभिमान आ जाता है, मैं यह करता हूँ। यह दिखावा है। स्वाभिमान और आनन्द की भावना होनी चाहिए। विशेष हैं, इसका दिखावा नहीं होना चाहिए।

- **क्रोध**- आसुरी वृत्ति और गुणों वाले छोटी-छोटी बातें भी मन की नहीं होने पर क्रोधित हो जाते हैं। माँ यदि मन का साग नहीं बनाती तो हम लोग क्रोध में आ कर भोजन नहीं करने का निश्चय कर लेते हैं।क्रोध आसुरी वृत्ति है।

- **पारुष्य**- कठोर व्यवहार। हम देखते हैं कि आस-पास जो पशु जैसे कुत्ता, बिल्ली, गाय होती हैं, उनके साथ कुछ लोग दुर्व्यवहार करते हैं। घर में चीटियाँ होती हैं तो उनको कुचलना नहीं चाहिए। कई लोग आजकल बिजली के बल्ले से मच्छर को मारते हैं। यह कठोर व्यवहार है। यह करना उचित नहीं है, आसुरी वृत्ति है। बहुत से उपाय हैं जिससे मच्छर को भगा सकते हैं।

- **अज्ञान**- अज्ञानी व्यक्ति श्रीभगवान् को नहीं मानने वाले होते हैं। स्वयं को शक्तिशाली मानते हैं। कुछ तो स्वयं को भगवान् भी मानते हैं। अज्ञानी वह है जिसके पास ज्ञान का अभाव है।

हमें पता है कि जीवन में आगे बढ़ने के लिए, चिकित्सक, शिक्षक, अभियन्ता बनने के लिए पढ़ना आवश्यक है। कुछ लोग पढ़ते भी हैं। कुछ लोग जानते हुए भी कल, परसों पर पढ़ने को टालते रहते हैं। नित्य गीता जी का अभ्यास करेंगे तो कण्ठस्थीकरण की परीक्षा में उत्तीर्ण हो पायेंगे, यह जानते हुए भी नहीं पढ़ते हैं।

दुर्योधन आसुरी गुणों वाला था। एक दिन श्रीकृष्ण ने दुर्योधन को पूछा कि तुम पाण्डवों को उनका अधिकार, उनका राज्य, यहाँ तक कि पाँच गाँव भी क्यों नहीं दे रहे हो?

कौरवों, पाण्डवों की शिक्षा एक ही गुरुकुल में, एक गुरु से ही हुई थी। एक ही तरह की शिक्षा प्राप्त हुई थी। दुर्योधन कहता है, मैं जानता हूँ पर कर नहीं पाता हूँ।

लोग पढ़-पढ़ कर ज्ञानी तो बन गये पर आसुरी वृत्ति के कारण जीवन में सुविचारों को लाना नहीं जानते।

16.5

दैवी सम्पद्विमोक्षाय, निबन्धायासुरी मता।
मा शुचः(स्) सम्पदं(न्) दैवीम्, अभिजातोऽसि पाण्डव।।16.5।।

दैवी सम्पत्ति मुक्ति के लिये (और) आसुरी सम्पत्ति बन्धन के लिये मानी गयी है। हे पाण्डव! (तुम) दैवी सम्पत्ति को प्राप्त हुए हो, (इसलिये तुम) शोक (चिन्ता) मत करो।

विवेचन- श्रीभगवान् यहाँ अर्जुन से कहते हैं कि उन्हें किसी प्रकार की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह जन्म से ही दैवीय सम्पदा से युक्त होकर आये हैं। वे तपस्वी, शालीन और चरित्रवान हैं।

श्रीभगवान् अर्जुन को सम्बोधित करके हम सबको भी यही उपदेश दे रहे हैं कि हमारे भीतर भी अनेक दैवीय सम्पत्तियाँ विद्यमान हैं, हमें उन्हें सँभालकर बढ़ाना है और जो थोड़े बहुत आसुरी गुण हैं, उन्हें कम करना है।

16.6

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्, दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः(फ्) प्रोक्त , आसुरं(म्) पार्थ मे शृणु।।16.6।।

इस लोक में दो तरह के ही प्राणियों की सृष्टि है -- दैवी और आसुरी। दैवी को तो (मैंने) विस्तार से कह दिया, (अब) हे पार्थ! (तुम) मुझसे आसुरी को (विस्तार) से सुनो।

विवेचन- आगे श्रीभगवान् बताते हैं कि संसार में दो प्रकार के लोग होते हैं- देव और असुर; अर्थात् अच्छे और बुरे। अच्छे लोगों के बारे में बता दिया, बुरे लोगों के बारे में विस्तार से सुनो तो तुम बुराई से, आसुरी गुणों से बच सकोगे।

16.7

प्रवृत्तिं(ञ्) च निवृत्तिं(ञ्) च, जना न विदुरासुराः।
न शौचं(न्) नापि चाचारो, न सत्यं(न्) तेषु विद्यते।।16.7।।

आसुरी प्रकृति वाले मनुष्य किस में प्रवृत होना चाहिये और किससे निवृत्त होना चाहिये (इसको) नहीं जानते और उनमें न तो बाह्य शुद्धि, न श्रेष्ठ आचरण तथा न सत्य-पालन ही होता है।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि आसुरी प्रवृत्ति वाले लोग यह नहीं जानते कि किस कर्म में प्रवृत्ति (करना चाहिये) है और किसमें निवृत्ति (नहीं करना चाहिये) है।

सत्र को बालसाधकों के लिए रोचक बनाने के लिए, त्वरित प्रश्नोत्तर किये गये।

- पढ़ाई- प्रवृत्ति/ निवृत्ति?

उत्तर- प्रवृति।

- जङ्क अर्थात् दूषित भोजन प्रवृति है या निवृत्ति?

उत्तर- निवृति।

- प्रतिदिन खेलना ?
- उत्तर- **थोड़ा बहुत खेलना प्रवृत्ति है।**

- हठ करना?

उत्तर- निवृत्ति।
भी
अर्थात् प्रवृति और निवृत्ति जनक कार्य हैं-

प्रवृत्ति- जैसे पढ़ाई करना, प्रतिदिन खेलना, शिक्षक की बात मानना, स्वच्छ रहना, प्रतिदिन गीता पाठ करना।
निवृत्ति- जैसे बाहर का अस्वच्छ भोजन खाना, आलस्य करना, अनुचित व्यवहार करना।

हिरण्यकशिपु ने भी यही भूल की, वह विष्णु की पूजा को रोककर अपनी पूजा करवाना चाहता था क्योंकि उसे प्रवृत्ति निवृत्ति का ज्ञान ही नहीं था। ऐसे लोगों में शिष्टाचार नहीं होता और वे असत्य बोलने में प्रवृत्त रहते हैं।

16.8

असत्यमप्रतिष्ठं(न्) ते, जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं(ङ्), किमन्यत्कामहैतुकम्।।16.8।।

वे कहा करते हैं कि संसार असत्य, बिना मर्यादा के (और) बिना ईश्वर के अपने-आप केवल स्त्री-पुरुष के संयोग से पैदा हुआ है। (इसलिये) काम ही इसका कारण है, इसके सिवाय और क्या कारण है? (और कोई कारण हो ही नहीं सकता।)

विवेचन- आसुरी वृत्ति के लोग ऐसा विचार रखते हैं कि ईश्वर की क्या आवश्यकता है जब सब कुछ स्वतः ही चल रहा है विश्व में।

इस सन्दर्भ में बेहद रोचक कथा-

एक बार एक बहुत बड़े चित्रकार थे और उनके पुत्र भी चित्रकार बने। पिताजी को तो ज्ञात था कि उनमें जो भी कला है, वह ईश्वर की देन है परन्तु पुत्र घमण्डी था। उसे लगता था कि जो भी कला है वह उसके अभ्यास से आयी है। वह मानने के लिए तैयार नहीं था कि परमात्मा हैं और उनकी की भक्ति करनी चाहिये।

एक दिन पिता ने इस विषय पर सोचते हुए एक योजना बनायी। उन्होंने एक भव्य चित्र बनाया और रात में उस चित्र को सोते हुए बेटे के पास रख दिया। सुबह जब बेटा उठा तो वह हैरान हो गया कि इतना सुन्दर चित्र किसने बनाया होगा। उसने जब पिताजी से पूछा तो पिता जी ने मना कर दिया कि उन्होंने यह चित्र नहीं बनाया।

पिताजी ने कहा क्या चित्र अपने आप से नहीं बन सकता? बेटे ने 'न' कहा। तब पिताजी ने कहा कि चित्र जैसी सामान्य वस्तु भी चित्रकार के बिना नहीं बन सकती तो इतना विशाल जटिल विश्व है, वह भी किसी ने बनाया ही होगा?

हर व्यक्ति के उँगलियों के निशान, आँखों की पुतलियाँ कभी भी दूसरे व्यक्ति से नहीं मिलतीं। कितने प्रकार के प्राणी, वनस्पति, जलचर हैं, विश्व में जिसका पता अभी तक वैज्ञानिकों को भी नहीं हुआ। ऐसे-ऐसे स्थानों पर जीव रहते हैं, जल में जहाँ ऑक्सीजन जाना भी मुश्किल है और यह तो केवल पृथ्वी की बात है। पृथ्वी के बाहर पता नहीं कितने ऐसे आश्चर्य होंगे।

पिता की इस बात से बेटे को यह ज्ञान प्राप्त हुआ कि ईश्वर हैं और उन्हीं की भक्ति से वे मुझे समझ में आएँगे और ऐसा लगेगा कि वे हमारे पास हैं परन्तु आसुरी लोग मानते हैं कि ईश्वर की आवश्यकता ही नहीं है। इस प्रकार से ही उनका व्यवहार भी

होता है।

16.9

एतां(न्) दृष्टिमवष्टभ्य, नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः, क्षयाय जगतोऽहिताः।।16.9।।

इस (पूर्वोक्त) (नास्तिक) दृष्टि का आश्रय लेने वाले जो मनुष्य अपने नित्य स्वरूप को नहीं मानते, जिनकी बुद्धि तुच्छ है, जो उग्र कर्म करने वाले (और) संसार के शत्रु हैं, उन मनुष्यों की सामर्थ्य का उपयोग जगत का नाश करने के लिये ही होता है।

विवेचन- आसुरी लोग जब ऐसा सोचते हैं तो वे भयावह और हानिकारक कर्मों में लग जाते हैं, जो दूसरों के लिए अत्यन्त कष्टकारक होते हैं। आज **यह प्रवृत्ति आतङ्कवादियों में स्पष्ट दिखाई देती है।** वे उग्र कर्म करते रहते हैं और न अपने भले का विचार करते हैं, न दूसरों के।

क्योंकि उन्हें यह विश्वास नहीं होता कि श्रीभगवान् हैं और उन्हीं के कारण हम सब एक दूसरे से जुड़े हैं, छोटे पक्षी से लेकर विशाल पेड़- पौधे, पशु, चिट्टियों तक। यदि यह समझ आ जाये कि हर जीव में श्रीभगवान् का अंश है तो कोई किसी को कष्ट नहीं पहुँचायेगा परन्तु आसुरी व्यक्ति इस ज्ञान से वञ्चित रहते हैं और दुष्कर्म करते रहते हैं।

16.10

काममाश्रित्य दुष्पूरं(न्), दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वासद्ग्राहान्, प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः।।16.10।।

कभी पूरी न होने वाली कामनाओं का आश्रय लेकर दम्भ, अभिमान और मद में चूर रहने वाले (तथा) अपवित्र व्रत धारण करने वाले मनुष्य मोह के कारण दुराग्रहों को धारण करके (संसार में) विचरते रहते हैं।

विवेचन- इसी अज्ञान के कारण उनके मन में अनेक प्रकार की इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, अधिकांशत: ऐसी इच्छाएँ, जो असम्भव या अनुचित होती हैं। जैसे किसी ने फ़ोन (iphone) क्रय कर लिया। उसी फ़ोन को थोड़ा परिमार्जित कर के हर वर्ष आईफ़ोन अपने नए स्वरूप में आ जाता है। उपयोग वही है फिर भी नया फ़ोन आना और उसके पीछे भागना। यह कोई सस्ती वस्तु तो है नहीं। इसको लेने के लिए बहुत सारा धन भी होना चाहिए न कि मात्र इच्छा।

श्रीभगवान् कहते है कि इच्छा रखना अनुचित नहीं है परन्तु मर्यादा और सामर्थ्य के अनुसार इच्छा रखनी चाहिये।

जिसके पास साइकिल है, उसे पहले उसी को ठीक से चलाना चाहिये; महँगी कार की इच्छा करना उचित नहीं। **महाभारत में वेदव्यास जी भी कहते हैं कि इच्छाएँ हों परन्तु उन्हें पूरा करने की क्षमता और सही मार्ग भी होना चाहिये**।

कर्म अच्छे तरीके से, बिना किसी को नुकसान पहुँचाए, नियमों के भीतर रहकर करने चाहिये। **जो लोग अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु अनुचित मार्ग अपनाते हैं, वे आसुरी प्रवृत्ति वाले बन जाते हैं**।

16.11

चिन्तामपरिमेयां(ञ्) च, प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा, एतावदिति निश्चिताः।।16.11।।

(वे) मृत्यु पर्यन्त रहने वाली अपार चिन्ताओं का आश्रय लेने वाले, पदार्थों का संग्रह और उनका भोग करने में ही लगे रहने वाले और 'जो कुछ है, वह इतना ही है' - ऐसा निश्चय करने वाले होते हैं।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि **जब इच्छाएँ अत्यधिक हो जाती हैं तो मनुष्य चिन्ता में डूब जाता है**।

उसका पूरा जीवन चिन्ता में व्यतीत होता है। यदि वह कुछ अच्छा प्राप्त भी कर ले तो उसका आनन्द नहीं ले पाता। इच्छाएँ हों परन्तु सन्तुलित हों, समाधान अनुसार हों, आसुरी लोग यह सन्तुलन नहीं रख पाते।

16.12

आशापाशशतैर्बद्धाः(ख्), कामक्रोधपरायणाः।
ईहन्ते कामभोगार्थम्, अन्यायेनार्थसञ्चयान्।।16.12।।

(वे) आशा की सैकड़ों फाँसियों से बँधे हुए मनुष्य काम-क्रोध के परायण होकर पदार्थों का भोग करने के लिये अन्याय पूर्वक धन-संचय करने की चेष्टा करते रहते हैं।

विवेचन- "पाश' अर्थात् बन्धन। आसुरी लोग सैकड़ों इच्छाओं के बन्धन में बँध जाते हैं और उनके जीवन में शान्ति नहीं रहती। वे क्रोधित, विचलित, चिड़चिड़े और निराश हो जाते हैं। अनेक वस्तुओं के पीछे भागते हैं परन्तु कुछ भी प्राप्त नहीं कर पाते।

अन्ततः वे अन्याय की ओर बढ़ जाते हैं। जब बड़ी कार, जैसे मर्सिडीज (Mercedes) जैसी बड़ी गाड़ी लेने की सामर्थ्य नहीं पर इच्छा हो जाती है तब लोग भ्रष्ट हो जाते है और भ्रष्टाचार को जन्म देते हैं और एक बार ऐसे मार्ग पर चलने लगे तो वापस लौटना कठिन हो जाता है। श्रीभगवान् कहते हैं कि ऐसे लोग धीरे-धीरे और गिरते जाते हैं और अन्त में अपने कर्मों का फल भोगते हैं।

कभी भ्रष्टाचार द्वारा धन कमाकर लाभ नहीं मिलता क्योंकि आगे चल कर उन्हें पछताना पड़ेगा। ऐसा समय आएगा जब उन्हें सब कुछ गँवाना पड़ेगा। ऐसा सिद्धान्त है इसलिए सभी कर्म सदमार्ग पर रहकर ही करने चाहिये।

16.13

इदमद्य मया लब्धम्, इमं(म्) प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे, भविष्यति पुनर्धनम्।।16.13।।

वे इस प्रकार के मनोरथ किया करते हैं कि - इतनी वस्तुएँ तो हमने आज प्राप्त कर लीं (और अब) इस मनोरथ को प्राप्त (पूरा) कर लेंगे। इतना धन तो हमारे पास है ही, इतना (धन) फिर भी हो जायगा।

16.14

असौ मया हतः(श्) शत्रुः(र्), हनिष्ये चापरानपि।
ईश्वरोऽहमहं(म्) भोगी, सिद्धोऽहं(म्) बलवान्सुखी।।16.14।।

वह शत्रु तो हमारे द्वारा मारा गया और (उन) दूसरे शत्रुओं को भी (हम) मार डालेंगे। हम ईश्वर (सर्व समर्थ) हैं। हम भोग भोगने वाले हैं।हम सिद्ध हैं, (हम) बड़े बलवान (और) सुखी हैं।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान् हमें आसुरी लोगों की मनःस्थिति के विषय में बताते हैं। वे घमण्डी हो जाते हैं। वे लोग अन्याय एवं धूर्तता से धन अर्जित करना आरम्भ कर देते हैं।

उनमें ऐसी भावना आ जाती है कि आज मैंने यह पा लिया है, कल मैं वह पा लूँगा। ऐसी भावना आ जाती है कि यह आज मेरा है, वह मेरा आज हो जायेगा और कल मैं और कोई नई वस्तु भी पा लूँगा। इच्छा की कहीं कोई सीमा ही नहीं है।

ऐसे लोगों को सब वस्तुओं की प्राप्ति की चाह हो जाती है और वे हर मूल्य पर उन वस्तुओं को अपना बनाकर ही रहना चाहते हैं। उन्हें ऐसा लगता है कि कोई उनके विरुद्ध आने की क्षमता नहीं रखता है या जो भी उनको रोकने का प्रयास करेंगे या उनके विरुद्ध जायेंगे उनको वे देख लेंगे- सामान्य आसुरी प्रवृत्ति।

सब असुर जिनके विषय में हमने अभी जाना, रावण, कंस उनकी यह मनःस्थिति होती है कि जो भी उनके विरुद्ध जाएगा उसको वे देख लेंगे। ऐसी भावना उनके भीतर है क्योंकि वे अपने आप को ईश्वर समझते हैं, अपने आप को सबसे बलवान समझते हैं और समस्त वस्तुओं का उपभोग करने वाला भी वे स्वयं को ही समझते हैं।

उन्हें लगता है कि सारा विश्व तो उन्हीं के लिए बना है। कहीं जाकर वे थूक दें, कचरा फेंक दें, कहीं किसी वस्तु को नष्ट कर दें तो भी कौन उन्हें कुछ बोल सकता है? इस प्रकार का उनका पूरा घमण्डी व्यवहार उनको पूर्ण आसुरी प्रवृत्ति का बना देता है।

हम सामान्य मनुष्य तो कुछ सामग्री उपयोग करने के पश्चात्, जैसे बिस्किट खाने के पश्चात उसके आवरण-पत्र को उचित स्थान पर फेंकते हैं पर ऐसे भी व्यक्ति देखते हैं जो कुछ भी सामग्री का प्रयोग करके कचरा इधर-उधर फेंक देते हैं और मन में कोई ग्लानि भी इस बात की नहीं रखते। यही आसुरी प्रवृत्ति का आरम्भ होता है।

यह भावना रखना ही आसुरी मनःस्थिति है कि सारा विश्व तो मेरा ही है, सब पर मेरा ही अधिकार है और मैं किसी का भी उपयोग कर सकता हूँ, क्या अन्तर पड़ता है, कोई भी मुझे कुछ बोल नहीं सकता।

एक प्रकार से वर्तमान वैश्विक घटनाक्रम भी इसी प्रकार की भावना रखने का परिणाम है क्योंकि हमें लगता है कि यह सारा विश्व मेरा ही है और मैं जैसे चाहे इसका प्रयोग करूँ।

नहीं, हमारा दायित्व है कि हम अपने स्वभाव को सम्भालते हुए आगे जायें, उतनी ही वस्तुएँ लें, जितनी हमें आवश्यकता है।

एक बड़ी रोचक बात है कि जितने पक्षी और जीव-जन्तु होते हैं, उनको जब भूख लगती है तब वे उतना ही खाते हैं जितनी उनको भूख है। फल से भरे हुए वृक्ष से भी कोई जीव-जन्तु उतने ही फल खाता है, जितनी उसकी भूख को शान्त करने के लिए चाहिये।

दूसरी ओर, मनुष्य क्या करते हैं? वे सब वस्तु लेकर रखना चाहते हैं अपने पास- यह भी, वह भी, पता नहीं कब काम आ जाये। यह बिल्कुल ही अनुचित दृष्टिकोण है।

गाँधी जी का एक कथन है- "प्रकृति माँ के पास सब कुछ है, सभी मनुष्यों की आवश्यकता पूर्ण करने के लिए परन्तु उनके लालच को पूर्ण करने के लिए नहीं।"

धरती पर हमारी आवश्यकता के अनुसार सब वस्तुएँ उचित मात्रा में उपलब्ध हैं लेकिन हमारे लोभ के लिए नहीं हैं। पृथ्वी सब लोगों की है और बराबर है, यह बात सब के मन में होनी चाहिये पर आसुरी व्यक्तियों के मन में यह बात नहीं होती इसीलिए वे ऐसा व्यवहार करते रहते हैं।

16.15

आढ्योऽभिजनवानस्मि, कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य, इत्यज्ञानविमोहिताः।।16.15।।

हम धनवान हैं, बहुत से मनुष्य हमारे पास हैं, हमारे समान दूसरा कौन है? (हम) खूब यज्ञ करेंगे, दान देंगे (और) मौज करेंगे - इस तरह (वे) अज्ञान से मोहित रहते हैं।

विवेचन- आसुरी लोगों में यह अभिमान, घमण्ड होता है कि वे बलशाली हैं। बहुत से लोगों पर उनका नियन्त्रण है। वे जो चाहे कर और करवा सकते हैं।

ऐसे लोग दिखावे के लिए अस्पताल खोल देते हैं। भोजन, अन्न का वितरण करते समय अपनी छवि (फ़ोटो) खिंचवा कर समाचार पत्र में छपवाने का एक मात्र उद्देश्य रहता है। वे चाहते हैं कि लोग मुझे जाने।

16.16

अनेकचित्तविभ्रान्ता, मोहजालसमावृताः।
प्रसक्ताः(ख्) कामभोगेषु, पतन्ति नरकेऽशुचौ।।16.16।।

(कामनाओं के कारण) तरह-तरह से भ्रमित चित्त वाले, मोह-जाल में अच्छी तरह से फँसे हुए (तथा) पदार्थों और भोगों में अत्यन्त आसक्त रहने वाले मनुष्य भयंकर नरकों में गिरते हैं।

विवेचन- इस प्रकार से जो लोग व्यवहार करते रहते हैं वे लोग सीधा नरक में गिरते जाते हैं। मृत्यु के पश्चात् का नरक तो अलग होता है पर हमारी पृथ्वी पर आने वाले सारे जन्म भी प्रभावित होते हैं।

हमने जो भी जन्म लिया है वह अपने कर्मों के कारण लिया है। हमारे माता-पिता अच्छे होते हैं या हम बचपन से गीता जी पढ़ रहे हैं या हमें अच्छे शिक्षक मिल रहे हैं, यह सब इसलिये क्योंकि हमारे पिछले जन्म के कर्म अच्छे थे।

पर लोग अगर बुरे-बुरे कार्य करते रहेंगे, अन्याय से पैसे कमाने लगेंगे, निर्धन और लाचार व्यक्तियों से भी पैसे लूटेंगे ताकि उन व्यक्तियों के पास तो कुछ भी न बचे पर ये आसुरी व्यक्ति चैन से अपने बड़े-बड़े घरों में रहें तो ऐसे आसुरी व्यक्ति निश्चित रूप से आगे अच्छे जन्म नहीं ले पायेंगे।

मृत्यु के बाद का नरक तो अलग बात है पर इसके साथ वह जैसे-जैसे पृथ्वी पर आता जायेगा, बुरे कर्मों के कारण वह बुरे लोगों से मिलता जायेगा और अधिक बुरे कामों में फँसता जायेगा। इस प्रकार उसका पूरा जीवन ही नरक के समान हो जायेगा।

16.17

आत्मसम्भाविताः(स्) स्तब्धा, धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते, दम्भेनाविधिपूर्वकम्।।16.17।।

अपने को सबसे अधिक पूज्य मानने वाले, अकड़ रखने वाले (तथा) धन और मान के मद में चूर रहने वाले वे मनुष्य दम्भ से अविधिपूर्वक नाममात्र के यज्ञों से यजन करते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कह रहे हैं कि इसी प्रकार से आसुरी लोग अपने धन और झूठी प्रतिष्ठा के कारण दिखावे के लिये छोटे कार्य करते रहते हैं पर भीतर ही भीतर वे और भी बुरे बनते जाते हैं।

16.18

अहङ्कारं(म्) बलं(न्) दर्पं(ङ्), कामं(ङ्) क्रोधं(ञ्) च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु, प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः।।16.18।।

(वे) अहंकार, हठ, घमण्ड, कामना और क्रोध का आश्रय लेने वाले मनुष्य अपने और दूसरों के शरीर में (रहने वाले) मुझ अन्तर्यामी के साथ द्वेष करते हैं (तथा) (मेरे और दूसरों के गुणों में) दोष दृष्टि रखते हैं।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान् कहते हैं कि इससे अहङ्कार बढ़ने लगता है। बल का मतलब है हठ बढ़ने लगता है। उनको

लगता है कि मेरे बल के अनुसार मैं कुछ भी कर लूँगा। दर्प यानी घमण्ड भी बढ़ने लगता है। काम व बहुत सारी इच्छायें उत्पन्न हो जाती हैं। क्रोधित होना शुरू हो जाते हैं। मन चल-विचल हो जाता है। ये सारे गुण उनमें अधिकाधिक निवास करने लगते हैं।

16.19

तानहं(न्) द्विषतः(ख्) क्रूरान् , संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभान्, आसुरीष्वेव योनिषु।।16.19।।

उन द्वेष करने वाले, क्रूर स्वभाव वाले (और) संसार में महानीच, अपवित्र मनुष्यों को मैं बार-बार आसुरी योनियों में ही गिराता ही रहता हूँ।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि और इस प्रकार से वे आसुरी योनियों में गिरते जाते हैं। अभी हमारी योनि मनुष्य योनि है। इन्द्र देव, सरस्वती देवी, वरुण देव, वायु देव और अन्य देवताओं की योनि देव योनि है।

वैसे ही कुबेर जी यक्ष की योनि में हैं। योनि का मतलब प्रजाति (species) है। जैसे हम पृथ्वी पर देखते हैं- मछली, पक्षी, पेड़-पौधे इनकी अलग-अलग योनियाँ है। विश्व भर में अनगिनत योनियाँ हैं, जिनका पूरा आभास हमें नहीं है।

श्रीभगवान् कहते हैं कि मैं फिर इनको आसुरी योनि में डालता जाता हूँ, जिससे इनका देव योनि में आना और भी अधिक कठिन हो जाता है। मनुष्य से देव बन पाना सरल है। अच्छी क्रियाओं से हम देव योनि प्राप्त कर सकते हैं क्योंकि हमारी योनि देव योनि के पास होती है परन्तु कुकर्म करने से ये मनुष्य इतने गिर जाते हैं कि उन्हें ऊपर चढ़ना अर्थात् देव योनि तक पहुँचना लगभग असम्भव हो जाता है।

16.20

आसुरीं(यँ) योनिमापन्ना, मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय, ततो यान्त्यधमां(ङ्) गतिम्।।16.20।।

हे कुन्तीनन्दन ! (वे) मूढ मनुष्य मुझे प्राप्त न करके ही जन्म-जन्मान्तर में आसुरी योनि को प्राप्त होते हैं, (फिर) उससे भी अधिक अधम गति में अर्थात् भयंकर नरकों में चले जाते हैं।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि इस प्रकार आसुरी योनि में आते-आते वहह मूढ़ बहुत सारे जन्मों तक वहीं घूमता रहता है, निरन्तर वहीं गिरता जाता है और मेरे पास पहुँचता ही नहीं है क्योंकि मेरे पास पहुँचने का रास्ता अब उससे बहुत ही दूर चला गया है। वे इतने बुरे कार्य करके फँस गये हैं कि उनके ऐसे ही बुरे-बुरे जन्म आते-जाते रहते हैं।

16.21

त्रिविधं(न्) नरकस्येदं(न्), द्वारं(न्) नाशनमात्मनः।
कामः(ख्) क्रोधस्तथा लोभ:(स्), तस्मादेतत्त्रयं(न्) त्यजेत्।।16.21।।

काम, क्रोध और लोभ - ये तीन प्रकार के नरक के दरवाजे जीवात्मा का पतन करने वाले हैं, इसलिये इन तीनों का त्याग कर देना चाहिये।

विवेचन- इस श्लोक में श्रीभगवान् हमें बताते हैं कि नरक जाने के तीन द्वार होते हैं। तीन ऐसे दुर्गुण हैं जिनसे आपका नरक का टिकट पक्का हो जायेगा। नरक में जाना है तो इस प्रकार का व्यवहार करो और अगर नहीं जाना है तो ध्यान रखो क्योंकि अगर ये गुण हम में हैं तो नरक में जाना निश्चित है। श्रीभगवान् कहते हैं कि इन तीन गुणों को त्याग देना चाहिये - काम, क्रोध और लोभ।

काम अर्थात् बहुत अधिक इच्छाएँ रखना। छोटी-छोटी कामनाएँ रहनी चाहिये जैसे कि अगर मैं पढ़ रही हूँ तो मेरे और अच्छे अङ्क आयें। यह कामना अच्छी है। मैं और अच्छे से अभ्यास करूँ। मैं गीता जी का पठन और कण्ठस्थीकरण और अच्छे से करूँ ताकि मैं शीघ्र ही गीताव्रती बन पाऊँ किन्तु बहुत अधिक कामना होना जैसे कि मुझे यह भी चाहिये, वह भी चाहिये, ऐसी कामना करना अनुचित है।

फिर दूसरा है क्रोध। छोटी-छोटी बातों में क्रोधित हो जाना- नरक का द्वार है।

लोभ अर्थात् अपने पास जो भी है, उससे भी अधिक चाहने की इच्छा करना। किसी के पास पहनने के लिए दस कपड़े हैं तब भी कहना कि मेरे पास तो कोई कपड़े ही नहीं- यह लोभ है और आगे जाकर तो और भी अधिक मूल्यवान वस्तुएँ आयेंगी तो उसमें भी लोभ नहीं करना चाहिये।

16.22

एतैर्विमुक्तः(ख्) कौन्तेय, तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः(श्) श्रेयस् , ततो याति परां(ङ्) गतिम्।।16.22।।

हे कुन्तीनन्दन ! इन नरक के तीनों दरवाजों से रहित हुआ (जो) मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है, (वह) उससे परम गति को प्राप्त हो जाता है।

विवेचन- जो इन तीन द्वारों (काम, क्रोध, लोभ) से मुक्त हो जाते हैं, वे अच्छे कार्यों में अपना समय व्यतीत करते हैं और ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो जाते हैं अर्थात् अच्छे-अच्छे जन्मों को प्राप्त होते हैं। अभी हमें अच्छा जन्म मिल गया है। अच्छे कर्मों से और अच्छा जन्म मिलेगा, हम और अधिक लोगों की सेवा कर पायेंगे। इस तरह से ये लोग देव योनि की ओर बढ़ते जाते हैं।

16.23

यः(श्) शास्त्रविधिमुत्सृज्य, वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति , न सुखं(न्) न परां(ङ्) गतिम् ।।16.23।।

जो मनुष्य शास्त्रविधि को छोड़कर अपनी इच्छा से मनमाना आचरण करता है, वह न सिद्धि (अन्तःकरण की शुद्धि) को, न सुख (शान्ति) को (और) न परमगति को (ही) प्राप्त होता है।

विवेचन- श्रीभगवान् कहते हैं कि इस प्रकार की बातें जो मैंने कही वह शास्त्रों में कही गयी हैं। यह मैं अपने मन से नहीं कह रहा हूँ। जो व्यक्ति शास्त्रों के अनुसार कार्य नहीं करता, उसके जीवन में कुछ अच्छा नहीं होता। प्रत्येक क्षण वह अनैतिक कार्य करता रहता है।

16.24

तस्माच्छास्त्रं(म्) प्रमाणं(न्) ते, कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं(ङ्), कर्म कर्तुमिहार्हसि।।16.24।।

अतः तेरे लिये कर्तव्य-अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र (ही) प्रमाण है - (ऐसा) जानकर (तू) इस लोक में शास्त्रविधि से नियत कर्तव्य-कर्म करने योग्य है अर्थात् तुझे शास्त्रविधि के अनुसार कर्तव्य-कर्म करने चाहिये।

विवेचन- श्रीभगवान् बोलते हैं कि शास्त्रों में जो बात कही गयी है, वह प्रामाणिक है अर्थात् अन्तिम सत्य है। जैसे यदि हम माता-पिता से पूछें कि मैं अपने दोस्तों के साथ कहीं जाऊँ क्या और हमारे माता-पिता कह दें कि नहीं मत जाओ तब नहीं जाना है। वह बात अन्तिम हो गई।

उसके आगे कोई बहस नहीं करनी है। उसके आगे कुछ नहीं। वैसे ही शास्त्रों की बात प्रमाण है। जीवन में कुछ भी शङ्का हो तो शास्त्रों की बात माननी चाहिये और उसी के अनुसार हमें निर्णय करना चाहिये कि हम जो कार्य करने जा रहे हैं, वे सही हैं या नहीं और वे कार्य करना चाहियें या नहीं।

इस प्रकार श्रीभगवान् ने इस अध्याय में अर्जुन को दैवीय और आसुरी गुणों के बारे में बताया। हमारे घर में भी शास्त्र रहते हैं - माता-पिता, गुरुजन, ज्येष्ठ व्यक्ति। यदि कोई कार्य करना है या नहीं, यह समझ न आ रहा हो तो हमें उनकी सलाह लेनी चाहिये और उनका उपदेश मानना चाहिये।

हरि नाम सङ्कीर्तन के साथ अध्याय का विश्राम हुआ।

प्रश्नोत्तर सत्र

प्रश्नकर्ता- अनय भैया।
प्रश्न- हम श्रीमद्भगवद्गीता जी के श्लोकों के विवेचन में श्रवण करते हैं कि क्रोध नहीं करना चाहिये परन्तु जब भगवान् नरसिंह हिरण्यकशिपु को दण्ड दे रहे थे तब श्रीभगवान् को भी क्रोध आया था, ऐसा क्यों हुआ?
उत्तर- श्रीभगवान् जब भी क्रोध करते हैं तब उसका कारण भिन्न होता है। हिरण्यकशिपु उनके भक्त प्रह्लाद को अनेक यातनाएँ दे रहा था। अपने भक्त को पीड़ा में देख, उन्हें क्रोध आया।

श्रीभगवान् के क्रोध से सम्बन्धित एक कथा प्रचलित है-
नरसिंह भगवान् द्वारा हिरण्यकशिपु के वध के पश्चात् समस्त देवी-देवता चिन्तित हो उठे कि श्रीभगवान् के क्रोध को कैसे शान्त किया जाये?

तब भक्त प्रह्लाद ने समस्त देवताओं से कहा कि **उनके श्रीभगवान् क्रोधित नहीं हैं**। एक शुद्ध भक्त को श्रीभगवान् कदापि क्रोधित प्रतीत नहीं होते। हमें भी यह ज्ञात है कि वह भगवान् विष्णु का कितना उग्र अवतार था तथापि नन्हें प्रह्लाद भयभीत हुए बिना श्रीभगवान् के निकट गये तथा उनकी गोद में बैठ गये।

भक्त प्रह्लाद को देख श्रीभगवान् का क्रोध स्वतः ही शान्त हो गया तथा वे अपने नन्हें भक्त को देख प्रसन्न हो गये। **वास्तव में यह श्रीभगवान् का क्रोध न होकर उनकी लीला थी**।

यह उसी प्रकार है कि जैसे हमारे माता-पिता हम पर क्रोध करते हैं परन्तु उनका वह क्रोध हमारी ही भलाई हेतु होता है। जब हम कोई अनुचित कार्य करते हैं तब ऐसे कार्यों को न करने देने हेतु हमारे माता-पिता द्वारा हमें चेताया जाना या दण्ड दिया जाना हमें जीवन में उचित मार्ग ग्रहण करने हेतु प्रेरित करता है।

।।ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु।।

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासु उपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यूँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः।।

इस प्रकार ॐ तत् सत् - इन भगवन्नामों के उच्चारणपूर्वक ब्रह्मविद्या और योगशास्त्रमय श्रीमद्भगवद्गीतोपनिषदरूप श्रीकृष्णार्जुनसंवाद में 'देवासुरसम्पदविभाग योग' नामक सोलहवाँ अध्याय पूर्ण हुआ।

हमें विश्वास है कि आपको विवेचन की रचना पढ़कर अच्छा लगा होगा। कृपया नीचे दिए लिंक का उपयोग करके हमें अपनी प्रतिक्रिया दीजिए।

https://vivechan.learngeeta.com/feedback/

विवेचन-सार आपने पढ़ा, धन्यवाद!

हम सब गीता सेवी, अनन्य भाव से प्रयास करते हैं कि विवेचन के अंश आप तक शुद्ध वर्तनी में पहुंचे। इसके बाद भी वर्तनी या भाषा संबंधी किन्हीं त्रुटियों के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

जय श्री कृष्ण !

संकलन: गीता परिवार - रचनात्मक लेखन विभाग

हर घर गीता, हर कर गीता!

Let’s come together with the motto of Geeta Pariwar, and gift our Geeta Classes to all our Family, friends & acquaintances

https://gift.learngeeta.com/

गीता परिवार ने एक नवीन पहल की है। अब आप पूर्व में सञ्चालित हुए सभी विवेचनों कि यूट्यूब विडियो एवं पीडीऍफ़ को देख एवं पढ़ सकते हैं। कृपया नीचे दी गयी लिंक का उपयोग करे।

https://vivechan.learngeeta.com/

|| गीता पढ़े, पढ़ायें, जीवन में लाये ||

||ॐ श्रीकृष्णार्पणमस्तु ||